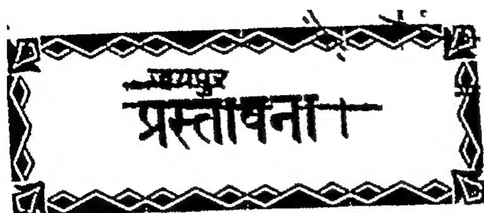

प्रकाशक
मूलचन्द किसनदास कापड़िया



प्रस्तावना।

दि० जैन समाजमें पूर्व समयमें अनेक मुनिराज परम अध्यात्मज्ञानी होगये हैं उनमेंसे श्री पद्मनन्दी मुनि महाराज भी एक थे। आपने विक्रम संवत १०८६ श्रावण सुदी ९ को अम्बड नगरमें ठहरकर श्री **णाणसार** अपर नाम **ज्ञानसार** नामक ग्रंथकी ६३ गाथाओंमें रचना की थी, जो सेठ माणिकचंद्र जैन ग्रन्थमालामें संस्कृत छाया सहित प्रगट हो गया है, लेकिन उसकी भाषाटीका अबतक प्रगट नहीं हुई थी।

करीब १॥ साल पूर्व हमको पं० तिलोकचंदजी पाटनी, मदनगंज नि० द्वारा मालूम हुआ कि उनके पास णाणसारकी छन्दबद्ध और भाषाटीका हस्तलिखित है जिसकी रचना (सं० १९७० कार्तिक वदी २ को उन्होंने केकड़ी (अजमेर) में की थी) अतः हमने इस भाषाटीकाकी कोपी उनसे मंगाई जो उन्होंने हमारे पास भेज दी थी, वह आज प्रगट की जाती है।

यह णाणसार या ज्ञानसार अध्यात्मिज्ञानका भंडार है। अतः इसकी स्वाध्याय करके अध्यात्मक ज्ञानकी निधि प्राप्त कीजिये यही निवेदन है। इसमें गाथा व संस्कृत छायाके बाद चौपाई छंदमें जो रचना की गई है, वह सरल व सुन्दर है, फिर उसपर अर्थ और कहीं २ विशेष खुलासा भी किया गया है। अतः इस आध्यात्मिक ग्रन्थका भाव समझनेमें कठिनाई नहीं होगी, ऐसा हमारा अनुमान है।

इस ग्रंथको 'जैनमित्र' के ४४ वें वर्षके ग्राहकोंको उपहारमें देनेकी जो व्यवस्था श्री० अध्यात्म-प्रेमी **सेठ सोभागचन्द कालीदासभाई डबका** (पादरा, बड़ौदा) निवासीने करदी है उसके लिये आपका जितना उपकार माना जाय कम है। इस पुस्तकमें आपके पिता स्व० सेठ

कालीदास अभयाभाईका संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है, क्योंकि आपके अन्त समयके २०००) के दानमेंसे ही यह शास्त्रदान होरहा है।

इस पुस्तककी कुछ प्रतियां सेठ सोभागचन्दजीने अलग भी निकलवाई हैं तथा हमने कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली हैं। आशा है ऐसी आध्यात्मिक पुस्तकका शीघ्र ही प्रचार हो जायगा।

इस पुस्तकके भाषाकार पं० तिलोकचन्दजी (केकडी) ने श्री योगीन्द्रदेव कृत परमात्म-प्रकाशकी भाषा छन्दबद्ध रचना भी की है। उसकी भी नकल हमारे पास पं० तिलोकचन्दजीने भेज दी है। जो कोई दानी मिल जानेपर प्रगट करनेकी हमारी अभिलाषा है। अतः ऐसे दानी इस विषयमें हमसे पत्रव्यवहार करें।

सूरत,
वीर सं० २४७०
कार्तिक सुदी १
ता० २९-१०-४३

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

स्व० सेठ कालीदास अमथाभाई-डबकाका
संक्षिप्त परिचय।

बड़ौदा राज्यके बड़ौदा प्रांतके पादरा ताळुकामें मही नदीके तटपर डबका नामका गाव है। वहांपर दि० जैन नृसिंहपुरा जातिमें संवत् १९१२ वैशाख बदी १३ रविवारके दिन रात्रिको १२॥ बजे आपका जन्म हुआ था। आपके पिताका नाम शाह अमथाभाई बहेचरदास था और माताका नाम मोतीबाई था। बड़े भाईका नाम त्रिभोवनदास अमथाभाई था, जिनको बाल्यावस्थामें पिताका स्वर्गवास होनेसे घरकी व्यवस्थाका काम करनेकी फरज पड़नेसे और गावमें दूसरी भाषा (अंग्रेजी) का प्रबंध नहीं होनेसे सिर्फ गुजरातीका आपने अभ्यास किया था। लेकिन वाचनकार्य अधिक होनेसे हिंदी भाषा और सरल संस्कृत भी आप समझ सकते थे। आपका प्रथम विवाह भड़ौच जिलेके वागरा गावमें मोतीलाल हरजीवनकी बहिन पार्वतीके साथ हुआ था और द्वितीय विवाह भड़ौच जिलेके 'अणोर' गावके शाह शिवलाल रायचंदजीकी बहिन उमियाबाई (जमनाबाई) के साथ हुआ था।

किसी भी व्यक्तिकी महत्ता धनाढ्य होनेमें या विविध भाषाके विद्वान होनेमें नहीं है, किन्तु मोक्षमार्गका यथार्थ बोध प्राप्त करनेमें है। उस समय गुजरातमें देव, गुरु, धर्म और सप्ततत्वका यथार्थ ज्ञानी श्रद्धानी शायद कोई भी नहीं था। सिर्फ गतानुगतिका पूजा, व्रत, उपवास, विना हेतु समझे बाह्य क्रियाकांडमें मचा हुआ था। यथार्थ

श्रद्धान, ज्ञानादि प्राप्त करनेका कोई निमित्त नहीं था। ऐसे समयमें उनके समागममें आनेवालोंपर छाप पड़े ऐसा कोई ज्ञान अध्यात्मज्ञान आपने संपादन किया था। उनके अध्यात्म प्रेमसे आकर्षित होकर श्वेताम्बर मुनि श्री० हुकमचंद्रजीने अपने बनाये हुए अध्यात्म प्रकरण और ज्ञान प्रकरण ये दो ग्रन्थ आपको भेट किये थे। स्वाध्याय करनेकी रुचि होनेसे दिगम्बर जैन धर्मके महत्वपूर्ण छपे हुए सभी ग्रन्थ आप मंगाया करते थे। वैसे ही श्वेताम्बरोंके वेदांतके और बौद्धधर्मके भी ग्रन्थ मंगाया करते थे। इससे आपके घरमें छोटासा पुस्तकालय बन गया था। मासिक पत्रोंमें उनको 'जैन हितैषी' खास प्रिय था। उसमें भी प्रेमीजीके लेख आप बहुत रुचिपूर्वक पढते थे।

जब जब संसारी कामोंसे निवृत्ति मिलती थी तब २ आप अपने मंगाये हुए तात्विक ग्रंथ पढते थे, या बनारसीदासजी कृत समयसारके काव्य, बनारसीदासजी, भूधरदासजी, भगवतीदासजी, आनन्दघन, हीराचंदजी आदिके बनाये हुए खास करके अध्यात्मिक पद गाते थे। सम्मेदशिखर, गिरनार, पावागढ आदि तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा आपने की थी। इस तरह जीवन व्यतीत करते हुए आपने संवत १९८८के आश्विन शुक्ल चतुर्दशीकी रात्रिके १० बजे णमोकार मंत्रका उच्चारण करते २ देह छोड़ दी थी व देह त्यागके पहले कई दिन पूर्व अपनी पूर्ण सावधानीमें आपने जैनोंकी भिन्न२ संस्थाओंको २०००) का दान दिया था। आपके सुपुत्र सेठ सौभाग्यचंद भी अपने पितातुल्य बड़े अध्यात्मप्रेमी व दानी हैं। —प्रकाशक।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

श्रीपद्मसिंहमुनिराजकृत-

ज्ञानसार (णाणसार)

मूल गाथा, संस्कृत छाया, भाषा छन्दोबद्ध व भाषाटीका सहित ।

सिरिवड्ढमाणसामी सिरसा णमिऊण कम्मणिड्डहणं ।
वोच्छामि णाणसारं जह भणियं पुव्वसूरीहिं ॥ १ ॥

श्रीवर्द्धमानस्वामिन शिरसा नत्वा कर्मनिदहन ।
वक्ष्यामि ज्ञानसार यथा भणित पूर्वसूरिभि. ॥ १ ॥

चौपाई ।

कर्मनाश अविचल थिति पाई, स्वामी वर्द्धमान सिर नाई ।
पूर्वाचार्य कथन अनुसारी, ज्ञानसार वर्णूं सुखकारी ॥ १ ॥

भाषाकारका मंगलाचरण ।

भूत भविष्यत अभीके, नमूं केवली सर्व ।
द्वादशांग श्रुतको नमू, नमूं गुरुगत गर्व ॥ १ ॥
ज्ञानसार प्राकृत रचा, पद्मसिंह मुनींद ।
रचिहूं भाषा चोपई, जजि तस पद अरविंद ॥ २ ॥

अर्थः—कर्मोंके नाश करनेवाले श्री वर्द्धमान जो अंतिम तीर्थंकर तिनको उत्तम अंग जो मस्तक ता करि नमस्कार करि जैसे पूर्वाचार्योंने वर्णन किया उसही अनुक्रम करि ज्ञानसार नाम ग्रंथको कहूंगा ।

भावार्थ—ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अंतराय, यह च्यार तो घातिया कर्म और वेदनीय आयु नाम गोत्र यह च्यार अघातिया, इन सब आठों कर्मोंको नष्ट करि अविचल स्थान ताहि प्राप्त हुए । अत अनंतज्ञानको प्राप्त हुवे कारण जिस मार्गसे उन्होंने ज्ञानविभव पाई उसही मार्गका वर्णन किया जायगा । अत इस ग्रंथकी आदिमें वो ही आराध्य हैं ।

प्रश्न—इसही मार्गसे ही अनंत जीवोंने ज्ञानविभव प्राप्त करी है उनको क्यों नहि नमस्कार किया ?

उत्तर—अंतिम तीर्थंकरसे ही पंचमकालमें धर्मकी परिपाटी चल रही है । इस समयके जीवोंके लिये तो विशेष उपकारी वही हैं । अतः वह ही मुख्य आराध्य हैं ।

आगे—यह जीव संसार परिभ्रमण क्यूं करै हैं सोई कहै हैं—

जीवो कम्मणिबद्धो चउगइसंसारसायरे घोरे ।
बुड्ढइ दुक्खक्कंतो अलहंतो णाणवोहित्थं ॥ २ ॥

जीव कर्मनिबद्ध चतुर्गतिसंसारसागरे घोरे ।
ब्रुडति दुःखाक्रान्तो अलभमान ज्ञानबोधित्वम् ॥ २ ॥

चौपाई ।

कर्म बंधमें यह अज्ञानी, ज्ञान नावको नहिं गहि प्राणी ।
दुःखयुक्त भवसागर माहीं, चउ गतिमें डूबे सक नाहिं ॥ २ ॥

अर्थः—ज्ञानावरणादि कर्मोंसे बन्धा हुआ यह जीव ज्ञानरूपी नावको नहीं पाकर नरक तिर्यंच मनुष्य देव इन च्यार गतिरूप संसार-समुद्रमें डूबे हुए दुःखी होय है ।

भावार्थ—अनन्तानन्त काल ताईं तो यह प्राणी मूढ मिथ्यातके उदय अज्ञानरूप ही रहा, जहा अक्षरके अनंतवें भाग ज्ञान पाइये हैं। वहांसे काल लब्धिनै निकसि दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, असैनी पंचेंद्रिय इन तिर्यंच पर्यायनिमें हू याके सुणकर समझनेयोग्य मति-श्रुतज्ञान ही नहीं हुआ जिसमे कि उपदेशादि सुनकर विचारपूर्वक हित अहितको जाण सके। यहातक तो सम्यग्ज्ञानकी योग्यता ही नही। कदाच सैनी पर्चेंद्रिय भी हुआ तो सम्यग्ज्ञानकी प्राप्तिका कारण मिलना दुर्लभ। कोईक तिर्यंचके उपदेशादिका निमित्त पाय काल-लब्धितैं सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होय है तो भी महाव्रतादि धारण करि मुक्तिसाधनकी पूर्ण योग्यता नहीं। ये सर्व पर्यायें उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं।

यहांतक तो सम्यग्ज्ञानरूपी नौकाकी प्राप्ति ही दुश्वार है। इस मनुष्य जन्ममें सम्यग्ज्ञानरूपी नौकाकी प्राप्तिकी योग्यता है सोहू द्रव्य क्षेत्र काल भाव बाह्य निमित्त विना बणे नहीं, इसलिये ज्ञान भावना मनुष्य पर्याय विना और पयायनिमें मुक्तिप्राप्तिके योग्य पासकै नहीं। और ज्यादा पर्यायें यह जीव ऐसी ही पावै हैं कि जहा इस ज्ञान नौकाको पहचान भी न सकै। इसे नहीं पाकर ही प्राणी ससार—समुद्रमें वहा जाय है सो निकल सकै नहीं। अत अनादिकालतैं बोधिलाभ हुआ ही नहीं, इस ही लिये अद्यापि संसारचक्रसे निवृत्त हुआ नहीं।

आगैं—कैसा ज्ञान ग्रहण करनेयोग्य है सो कहैं हैं—

णाणं जिणेहि भणियं फुडत्थवाईहि विगयलेवेहिं।
तं चिय णिस्संदेहं णायव्वं गुरुपसाएण ॥ ३ ॥

ज्ञान जिन भणित, स्फुटार्थवादिभि विगतलेप ।
तत्त्व निस्संदेह, ज्ञातव्य गुरुप्रसादेन ॥ ३ ॥

चौपाई ।

स्पष्टवाद निर्लेपी जोई, जिनवर कथित ज्ञान जो होई ।
निःसंशय होकर उर धारो, गुरु उपदेश थकी निरधारो ॥ ३ ॥

अर्थः—गुरुके उपदेशसे ज्ञान जानना चाहिये । कैसा ज्ञान जो कि तीर्थङ्कर केवलीने कहा हो । तीर्थङ्कर धर्मतीर्थ चलानेवाले होते हैं औरका कहा प्रमाण नहिं, क्योंकि प्रामाणिक वक्ताके वचन प्रामाणिक होते है । तीर्थङ्कर स्पष्ट रूपसे पदार्थोंका वर्णन करते है । क्योंकि स्पष्ट वर्णन विना मंदबुद्धि समझे नहीं ।

तीर्थंकर कर्मोंके लेपसे रहित हैं, कर्म लेप दूर हुए विना सर्वज्ञ नही हो सके । सर्वज्ञ विना स्पष्ट कैसे जाने । स्पष्ट जाने विना यथार्थ उपदेश नहीं हो सक्ता । इसलिये उनहीका कहा हुआ ज्ञान सन्देह रहित है ।

प्रश्न—इस पंचमकालमें ऐसे वक्ता तो कोई है नहीं फिर सत्यार्थ कैसे समझे ?

उत्तर—उनके द्वारा कहे ग्रन्थोंके अनुकूल हो उसे सत्यार्थ समझो।

प्रश्न—आजकल जो ग्रन्थ देखे जाते हैं वह तो छद्मस्थ आचार्योंकी कृति है ।

उत्तर—अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमानने जो व्याख्यान किया ताकी गणधर व ऋषियोंने द्वादशांग रूप रचना की जिसके बाद अनुक्रमसे ज्ञानकी कमी होती गई । वर्द्धमान भगवानके ६४२ वर्ष बाद पुष्पदंत आचार्य तथा ६६२ वर्ष पीछे भूतबलि आचार्य हुए उन्होंने ग्रन्थरूप

रचना कर पुस्तकाकार किया क्योंकि ऐसा किये बिना ज्ञान नष्ट हो जाता।

और भी अनेक आचार्योंने अनेक ग्रन्थ रचे सो भी इतनी विस्तृत रचना नहीं किंतु संक्षेपमें सारूपसे द्वादशांगके अनुकूल रचे इसलिये परिपाटी अपेक्षा सर्वज्ञ कथित ही है।

प्रश्न—ग्रन्थ तो अन्य धर्मवालोंके भी हैं वह भी सर्वज्ञकथित बताते हैं फिर कैसे निर्णय किया जाय?

उत्तर—ग्रन्थोंको मिलान करके जो ग्रन्थ युक्ति अनुमान प्रत्यक्षसे बाधित नहीं हो सो प्रमाण मानो। निर्णय बुद्धिसे विचार तो सांच झूठ छिपै नहीं, इसप्रकार निर्णय करो और सर्वज्ञकथित ग्रहण करो।

कंदप्पदप्पदलणो डंभविहीणो विमुक्कवावारो।
उग्गतवदित्तगत्तो जोई विण्णाय परमत्थो॥ ४॥

कन्दर्पदर्पदलनो दम्भविहीनो विमुक्तव्यापार।
उग्रतपोदीप्तगात्र योगी विज्ञ परमार्थ॥ ४॥

चौपाई।

काम गर्वके दलनेवाले, गत व्यापार कपट सब टाले।
उग्र तपोंसे दीपित काया, सो वक्ता ज्ञानी मुनिराया॥ ४॥

अर्थ—कामरहित ज्ञान पूजा कुल जाति पराक्रम वैभव तप शरीर इन आठ प्रकारके मदोंसे रहित उग्र तपोंसे दीप्तिमान शरीरधारी ऐसे गुरु ही ज्ञानके उपदेशके लिये समर्थ हैं।

भावार्थ—कामी मानी कपटी रागद्वेषयुक्त गुरु सत्यार्थ उपदेश नहीं दे सके इसलिये ग्राह्य नहीं।

पंचमहव्वयकलिओ मयमहणो कोहलोहभयचत्तो।
एसो गुरुत्ति भण्णइ तम्हा जाणेह उवएसं ॥ ५ ॥

पञ्चमहाव्रतकलितो मदमथन क्रोधलोभभयत्यक्त।
एष गुरुरिति भण्यते तस्मात जानीहि उपदेश ॥ ५ ॥

चौपाई

शुद्ध महाव्रत पाँचो धारे, क्रोध लोभ मद मोह निवारे।
इन्द्रिय जीत भय स्मर खोई, ऐसे गुरु उपदेशक होई ॥ ५ ॥

अर्थ—शुद्ध महाव्रतमें युक्त दूर हुए हैं काम क्रोध लोभ भय चिंता जिनके, ऐसे गुरुका उपदेश सुनो। क्योंकि स्वयं व्रत रहित क्रोधी लोभी मायावी डरपोक चिंतावान यथार्थ उपदेश नहीं दे सक्ते।

आगे ध्यानका वर्णन करे हैं—

पत्तोवएससारो जोई जइ णवि जिणेइ णियचित्तं।
तो तस्स ण थाइ थिरं झाणं मरुपहयपत्तंव ॥ ६ ॥

प्राप्तोपदेशसार योगी यदि नव जयति निजचित्त।
तदा तस्य न स्थीयते स्थिर ध्यान मरुत्प्रहतपत्रमिव ॥ ६ ॥

चौपाई।

सार देशना योगी पाके निज आत्मामें निज मन लाके।
नहिं रोके, तो मन चल होई, पवन संगते पत्त ज्योंई ॥ ६ ॥

अर्थ—उपरोक्त ऐसे गुरुसे प्राप्त किया है उपदेशका सार जिसने ऐसा योगी आत्मामें अपने चित्तको नहीं रोकै तो निश्चल ध्यान-आत्म चितारूप नहीं होता, पवन वेगमें पत्तेकी तरह।

भावार्थ—सच्चे गुरुसें उपदेश लेकर योगी आत्मचितवन विषै चित्तको लगावे नहीं तो पवनसे पत्तेकी तरह स्थिर नहीं रहै।

झाणेण विणा जोई असमन्थो होइ कम्मणिद्दहणे।
दाढाणहरिविहीणो जह सीहो वग्गयंदाणं ॥ ७॥

ध्यानेन विना योगी असमर्थो भवति कर्मनिर्दहन।
दंष्ट्रानखरविहीनो यथा सिंहो वरगजेन्द्राणां ॥ ७॥

चौपाई।

ध्यान विना ध्याता नहिं होई कर्म दहनको समरथ कोई।
नख दाढो बिन केहरि जेम, गज घातन समरथ नहिं तेम ॥७॥

अर्थ—जैसे नख और डाढोंके विना सिंह मदोन्मत्त हस्तियोंको नाश करनेमें असमर्थ होता है तैसे ध्यानके विना योगी कर्मोंके नाश करनेमें असमर्थ होता है।

भावार्थ—आत्मध्यान विना कर्मनाश होते नहीं।

तम्हा तडिव्वचवलं णियचित्तं जोइणा जिणयव्वं।
जियचित्तं णियझाणं होइ थिरं वद्धसलिलंव ॥ ८॥

तस्मात् तडिद्वत् चपलं निजचित्तं योगिना जेतव्यं।
जितचित्ते निजध्यानं भवति स्थिरं वद्धसलिलमिव ॥ ८॥

चौपाई।

मन चंचल चपलाकी नाई, ता मनको वश करहू सांई।
बांधे बिन जिम जल स्थिर नाही, मन वश बिन ध्यान न हो स्थायी ॥८॥

अर्थ—क्योंकि योगियोंको विजलीके समान चञ्चल चित्तको जीतना चाहिये। जब ही ध्यान बन्धे हुए जलकी तरह स्थिर होता है।

भावार्थ—मन चचल है सो आलंबन विना एक जगह स्थिर नहीं रहता सोई आत्मानुशासनमे कहा है—

छन्द शिखरणी।

अनेकान्ती ही है फल कुसुम शब्दार्थ जिसमे।
अरु वाचा पत्ते बहुत नय शाखा लसत ज्हा॥
घनी है ऊँचाई जड दृढ मतिज्ञान जिसका।
रमावे विद्वान् या श्रुत तरु विषे चित्त कपिको॥१७०॥

ध्यानके योग्य स्थान।

गिरिकंदरविवरसिलासयेसु मढमंदिरेसु सुण्णेसु।
णिदंसमसयणिज्जणठाणेसु झाणमब्भसह॥ ९॥

गिरिकंदराविवरशिलाशयेषु मठमंदिरेषु शून्येषु।
निर्दंशमशकनिर्जनस्थानेषु ध्यानमभ्यसत॥ ९॥

चौपाई।

गिरि कंदर बिलसिला मठमाही, कोटर घर सुने बन ठाही।
दंश मंश अरु नहि नर जावे, निरुपद्रव स्थानकमें ध्यावे॥ ९॥

अर्थ-पर्वत गुफा बिल सिला तथा मठ मन्दिरोंमे श्रेष्ठ वनोंमे डांस मच्छर रहित मनुष्य संचार रहित ऐसे स्थानोंमे ध्यानका अभ्यास करो।

भावार्थ-ध्यानके लिये ऐसा स्थान हो जहां ध्यान भंगके कारण बाधा उपद्रवकी संभावना न हो।

ध्यानके भेद—

झाणं चउप्पयारं भणंति वरजोइणो जियकसाया।
अट्टं तह य रउद्दं धम्मं तह सुक्कझाणं च॥ १०॥

ध्यानं चतुःप्रकारं भणंति वरयोगिनः जितकषायाः।
आर्तं तथा च रौद्रं धर्मं तथा शुक्लध्यानं च॥ १०॥

चौपाई।

आर्तरौद्रध्यान दुठ होई, धर्म शुक्ल दोय शुभ होई।
ध्यान भेद यों यह है च्यारा, निष्कषाय मुनिवर कह सारा॥ १०॥

अर्थ—जिन्होंने कषायें जीत ली हैं ऐसे योगीश्वर आर्त-रौद्र, धर्म शुक्ल च्यार प्रकारका ध्यान कहते हैं।

दुर्ध्यान वर्णन—

तंबोलकुसमलेवणभूसणपियपुत्तचिंतणं अट्टं।
बंधणडहणवियारणमारणचिंता रउद्दंमि ॥ ११ ॥

तांबूलकुसुमलेपनभूषणप्रियपुत्रचिंतनं आर्तं।
बंधनदहनविदारणमारणचिंता रौद्रे ॥ ११ ॥

चौपाई।

पान फुल लेप रू सुत माता, चिंते सो हो आर्त हि ध्याता।
बंधन जालन चीरण घाता, चिंते सो हो रौद्र हि ध्याता ॥११॥

अर्थ—पान पुष्प सुगंधिलेपन भूषण, प्यास, पुत्रादिका चितवन आर्तध्यान है। और बांधना, जलाना, चीरना मारना इत्यादि चितवन रौद्रध्यान है। अन्यत्र इस प्रकार कहा है—

अपनी प्रिय वस्तु जो धन कुटुम्बादि तिनके वियोगमें उनके मिलनेके लिये वारवार चिंतवन करना इष्टवियोग आर्तध्यान है। अपनेको दुखदायी दरिद्रता शत्रु आदिके संयोगमे वियोगके लिये चिंतवन करना अनिष्ट संयोग आर्तध्यान है। अपने शरीरमें रोग इत्यादि होनेपर दूर होनेके लिये वारवार चिन्तवन करना पीडा चिन्तवन आर्तध्यान है और भावी सांसारिक सुखोंके लिये चिन्तवन करना निदान बंध आर्तध्यान है। आर्त अथवा दुखके लिये ध्यान अथवा चिंतवन सो आर्तध्यान, यह ध्यान छठे गुणस्थान तक होय है, निदान बंधके विना।

और रौद्रध्यान भी च्यार प्रकार है। १—हिंसानंद कहिये

किसी जीवके बांधने मारने आदिमें आनन्द मानना या ऐसे विचार स्वयं करे । २-मृषानंद कहिये झूठमें आनन्द माने या खुद झूठ विचारादि करें । ३-चौर्यानंद कहिये चोरीमें, चोरोंकी कथाओंमें आनंद माने या स्वय विचार करना आदि । ४-परिग्रहानन्द कहिये धनधान्यादिकमें आनंद माने या इसीके विचारमें रहना यह पंचम गुणस्थान तक होता है, छठेमें हो तो संयम छूट जाय. यह दोनू दुर्ध्यान पापबन्धके कारण त्याज्य है ।

धर्मध्यान, शुक्लध्यान ।

सुत्तत्थमग्गणाणं महव्वयाणं च भावणा धम्मं ।
गयसंकप्पवियप्पं सुक्कज्झाणा मुणेयव्वं ॥ १२ ॥

सूत्रार्थमार्गणानां महाव्रतानां च भावना धर्मं ।
गतसंकल्पविकल्पं शुक्लध्यानं मन्तव्यं ॥ १२ ॥

चौपाई ।

सूत्र अर्थ मार्गण व्रत साता, धर्मध्यानमें यह सब ध्याता ।
नहिं संकल्प विकल्प जु होई, शुक्लध्यान जानों तुम सोई ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ कहिये द्वादशांगरूप जिनवाणी तथा ४ गति, ५ इंद्रिय, ६ काय १५ योग, ३ वेद, २५ कषाय, ७ संयम, ८ ज्ञान, ४ दर्शन, ६ लेश्या, २ भव्याभव्य, ६ सम्यक्त्व, २ सैनी—असैनी, २ आहारक अनाहारक ऐसें १४ मार्गणा ५ महाव्रतोंकी २५ भावना तथा १४ गुणस्थान, १२ भावना, १० धर्म इत्यादि चितवन धर्मध्यान है । संकल्प विकल्प रहित आत्मचितवन शुक्लध्यान है । सो धर्मध्यानके भी च्यार भेद है । जिनेन्द्रकी आज्ञाका चितवन—आज्ञाविचय—१ । कर्मोंके उदय किन २ कर्मोंसे कैसे कैसे आते है, उनसे

क्या क्या कष्ट होते है इनसे छूटनेके उपाय इत्यादि चितवन—अपाय विजय—२। कर्मोके विपाक फलका विचार करना, किस जातके बंधका कैसा उदय होता है, तीव्र मंदादि विचारना—विपाक विचय—३। तीन लोकके आकारका, समवशरणादि रचनाओंका परमेष्ठीवाचक मंत्रोंकी कमलादि आकृतिमें रचनाका चिंतवना इत्यादि। सम्थान विचय—४। यह च्यार प्रकार धर्मध्यान है।

शुक्लध्यान च्यार प्रकार है। १—पृथक्त्ववितर्कविचार। जिसमें जुदा जुदा श्रुतका विचार नाम बदलना। भावार्थ—इस ध्यानमे शब्दसे शब्दांतर, अर्थसे अर्थांतर, योगसे योगांतर पलटते रहते है। यह ध्यान बारवें गुणस्थान तक होता है और मन वचन काय तीनों योगोंमें बदलता रहता है।

२—एकत्ववितर्क अविचार। ध्यानमें शब्दसे शब्दांतर, अर्थसे अर्थांतर, योगसे योगांतर नहिं हो तो मोहनीय कर्म क्षीण होते ही जिस योगमें जिस शब्दमें जिस अर्थ पदार्थमे ध्यान था वहीं स्थिर हो जाता है। यह ध्यान तेरवें गुणस्थान तक रहता है।

३—सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति। मन वचन कायकी क्रियाको कर सूक्ष्म काय योगमें स्थिर करना यह तेरवें गुणस्थानके अन्तमें आयुकर्मके समान शेष आघातियाओंकी स्थिति करनेके लिये समुद्घात करनेके बाद अथवा अघाति चतुष्क समान स्थितिवाले हों तो विना समुद्घात किये ही तेरवेंके अन्तमे सूक्ष्म काययोगमे आते हैं अर्थात् योग निरोधके समय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान होता है।

४—व्युपरतक्रिय निवर्ति। तेरवेंके लगते ही चौदवें अयोग

गुणस्थानमें जबकि श्वासोश्वासादि सूक्ष्मकाय योगकी क्रिया भी रुक जाती है तब होता है—

किस ध्यानसे कौन गति बंधती है सो कहते हैं—

तिरियगई अट्टेण णरयगई तह रउद्दझाणेण ।
देवगई धम्मेणं सिवगइ तह सुक्कझाणेण ॥ १३ ॥

तिर्यग्गति आर्तेन नरकगति. तथा रौद्रध्यानेन ।
देवगति· धर्मेण शिवगतिस्तथा शुक्लध्यानेन ॥ १३ ॥

चौपाई ।

हो तिर्यंच आर्त सूंति होई, रौद्र थकी नारक गति सोई ।
धर्मध्यानतें सुरगति जावे, शुक्लध्यानतें शिवगति पावें ॥ १३ ॥

अर्थ—आर्तध्यानतें जीवके तिर्यंच गति बन्ध है, रौद्रध्यानतें नरकगति, धर्मध्यानतें देवगति व शुक्लध्यानतें मोक्ष पावे है ।

अट्टरउदं झाणं तिरिक्खणारयदुक्खसयकरणं ।
चइऊण कुणह धम्मं सुक्कज्झाणं च किं बहुणा ॥ १४ ॥

आर्तरौद्र ध्यान तिर्यग्नारकदुःखशतकरणं ।
त्यक्त्वा कुरु धर्मं शुक्लध्यानं च किंबहुना ॥ १४ ॥

चौपाई ।

आर्तरौद्रते दुर्गति पाओ, दुःखमयी तात मत ध्याओ ।
धर्म शुक्ल सुखकर ही जानो, तातें ध्यान दोय मन ठानो ॥१४॥

अर्थ—आर्तध्यानतै तिर्यञ्चगति होती है, रौद्रध्यानतै नरकगति होती है और वहा सैकडों दुःखोंकी प्राप्ति होती है इसलिये इन दोनों दुर्ध्यानोंको छोडकर सुखकारी धर्मध्यानको ग्रहण करो । बहुत कहा कहै ।

भावार्थ—आर्त रौद्रध्यान दुखकर है अत हेय है। धर्मध्यान शुक्लध्यानतै स्वर्ग मोक्ष मिलता है अत. उपादेय है। धर्मध्यान भी संसारका कारण है परन्तु परम्पराये मुक्तिका कारण है, अत· उपादेय है।

अब धर्मध्यानकी विधि कहते है—

सामाइयं जिणुत्तं पढमं काऊण परमभत्तीए।
चिंतह धम्मझाणं गलइ मलं जेण सहसत्ति ॥ १५ ॥

सामायिक जिनोक्त प्रथम कृत्वा परमभक्त्या।
चिंतय धर्मध्यान गलति मल येन सहसा इति ॥ १५ ॥

चौपाई।

प्रथम परम मुक्तियुत करहू, जिन भाषित सामायक धरहू।
धर्मध्यान चिंतो मनमाही, तात पाप मल झड जाही ॥ १५ ॥

अर्थ—प्रथम ही भगवान जिनेन्द्रकी कही हुई सर्व सावद्य विरतिरूपा अर्थात् सपूर्ण कियाओंके त्यागपूर्वक सामायिक परमभक्तिके साथ ग्रहण करि धर्मध्यानका चिंतवन करै जिससे कि पापमल शीघ्र नाश हों। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

रागद्वेषको त्यागकर, सर्व साम्य अवधार।
तत्व प्राप्तिका मूल अति, सामायिक धरि सार ॥
सामायिक युत जीवके, पाप त्याग ही होय।
चरण मोहके उदय भी, अतः महाव्रत जोय ॥
समता स्तुति अरु वंदना, प्रतिक्रम प्रत्याख्यान।
कायोत्सर्ग जु षट् करो, आवश्यक पहिचान ॥

सुत्तत्थधम्ममग्गणवयगुत्तीसमिदिभावणाईणं।
जं कीरइ चिंतवणं धम्मज्झाणं च इह भणियं ॥ १६ ॥

सूत्रस्यधर्ममार्गणव्रतगुप्तिसमितिभावनादीनां ।
यत् क्रियते चिंतवन धर्मध्यान च इह भणित ॥ १६ ॥

चौपाई।

सूत्र अर्थ अरु मार्गण जोई, गुप्ति समिति भावन है सोई।
इनका चिंतवन हो जिस माही, धर्मध्यान जानो वह थाई ॥ १६ ॥

अर्थ—सूत्रार्थ और १४ मार्गणा, उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य यह दश धर्म, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग ऐसे पाच महाव्रत, मन, वचन, काय तीनोंका वशमें करना सो ३ गुप्ति, ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण, आलोकित पान भोजन यह पाच समिति, अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व अशुचित्व, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ इन १२ भावनाओंका चिंतवन सो धर्मध्यान है। तथा और भी जिनोक्त वर्णन है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग इनका विचारना इत्यादि सब धर्मध्यान हैं।

जीवाइ जे पयत्था कायव्वा ते जहट्ठिया चेव।
धम्मज्झाणं भणियं रायदोसे पमुत्तूणं ॥ १७ ॥

जीवादयो ये पदार्था ध्यातव्या न यथास्थिता चैव।
धर्मध्यान भणित रागद्वेषौ प्रमुच्य ॥ १७ ॥

चौपाई।

जीव अजीव तत्त्व सब ध्यावे, रागद्वेष तासे नहिं लावे।
दृढ मन कर ध्यावै इम जोई, धर्मध्यान जानो यह सोई ॥१७॥

अर्थ—जीवादिक पदार्थ जैसें अवस्थित है तैसें रागद्वेष रहित उनके स्वरूपको विचारना सो भी धर्मध्यान है।